# Chapter सोलह

# बन्दीजनों द्वारा राजा पृथु की स्तुति

मैत्रेय उवाच
इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ।
तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; इति—इस प्रकार; ब्रुवाणम्—कहते हुए; नृपतिम्—राजा को; गायकाः—स्तुति करनेवाले; मुनि—मुनियों द्वारा; चोदिताः—आदेश पाकर; तुष्टुवुः—प्रशंसित; तुष्ट—संतुष्ट, प्रसन्न; मनसः—उनके मन; तत्—उसके; वाक्—शब्द; अमृत—अमृत के समान; सेवया—सुनने से।

**महर्षि मैत्रेय ने आगे कहा : जब राजा पृथु इस प्रकार विनम्रता से बोले, तो उनकी अमृत-तुल्य वाणी से गायक अत्यधिक प्रसन्न हुए। तब वे पुनः ऋषियों द्वारा दिये गये आदेशों के अनुसार राजा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।**

**तात्पर्य :** यहाँ पर *मुनिचोदिताः* शब्द ऋषियों तथा साधु पुरुषों से प्राप्त आदेशों को सूचित करता है। यद्यपि महाराज पृथु अभी सिंहासन पर बैठे मात्र ही थे और उनके दैवी गुण प्रकट नहीं हुए थे तो भी सूत, मागध तथा बन्दीजनों ने समझ लिया था कि वे भगवान् के अवतार थे। वे ऋषियों तथा विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा दिये आदेशों से ऐसा समझ पाये। हमें भगवान् के अवतार को अधिकारी व्यक्तियों के आदेशानुसार समझना पड़ता है। हम अपने मनगढन्त भाव से ईश्वर नहीं बना सकते। जैसाकि नरोत्तमदास ठाकुर ने कहा है—*साधु-शास्त्र-गुरु*—मनुष्य को समस्त आध्यात्मिक मामलों की परीक्षा साधुओं, शास्त्रों तथा गुरु के आदेशानुसार करनी होती है। गुरु वह है, जो अपने पूर्ववर्तियों अर्थात् साधुओं या साधुपुरुषों के आदेशों का अनुगमन करता है। प्रामाणिक गुरु कभी भी ऐसी बात नहीं बताता जिसका उल्लेख शास्त्रों में न हो। सामान्य मनुष्यों को साधु, शास्त्र तथा गुरु के आदेशों का अनुसरण करना होता है। शास्त्रों के कथन तथा प्रामाणिक गुरु या साधु के वचनों में कभी अन्तर नहीं होता।

सूत, मागध इत्यादि गायकों को विश्वसनीय रीति से पता था कि राजा पृथु भगवान् के अवतार हैं। यद्यपि राजा ने ऐसी स्तुति के लिए मना किया था, क्योंकि उनमें अभी वे गुण प्रकट न हुए थे, किन्तु गायक माने नहीं। वरन्, वे राजा से और अधिक प्रसन्न हुए, क्योंकि वास्तव में ईश्वर के अवतार होते

हुए भी वे भक्तों के साथ अपने व्यवहार में इतनें विनम्र और प्रसन्नमुख थे। इस प्रसंग में हमें पूर्ववर्ती उल्लेख (४.१५.२१) पर ध्यान देना चाहिए जहां कहा गया था कि राजा पृथु हँस रहे थे और गायकों से बातें करते समय प्रसन्न मुद्रा में थे। इस प्रकार हमें चाहिए कि हम ईश्वर से या उसके अवतारों से भद्र तथा विनीत बनना सीखें। राजा का आचरण गायकों को अच्छा लगा, अत: राजा के मना करने पर भी, साधुओं तथा मुनियों के आदेश से वे राजा के भावी कार्यों की भी प्रशंसा करते रहे।

**नालं वयं ते महिमानुवर्णने**
**यो देववर्योऽवततार मायया ।**
**वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते**
**वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ॥ २॥**

शब्दार्थ

न अलम्—समर्थ नहीं; वयम्—हम; ते—तुम्हारी; महिम—महिमा, यश; अनुवर्णने—वर्णन करने में; य:—जो; देव—भगवान्; वर्य:—सर्वप्रथम; अवततार—अवतरित हुआ; मायया—अन्तरंगा शक्ति अथवा अहैतुकी कृपा से; वेन-अङ्ग—राजा वेन के शरीर से; जातस्य—उत्पन्न होनेवाले की; च—तथा; पौरुषाणि—महिमामय कार्य; ते—तुम्हारा; वाच:-पतीनाम्—महान् वक्ताओं का; अपि—यद्यपि; बभ्रमु:—चकरा जाते हैं; धिय:—मन।

**गायकों ने आगे कहा : हे राजन्, आप भगवान् विष्णु के साक्षात् अवतार हैं और उनकी अहैतुकी कृपा से आप पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं। अत: हममें इतनी सामर्थ्य कहाँ कि आपके महान् कार्यों का सही-सही गुणगान कर सकें? यद्यपि आप राजा वेन के शरीर से प्रकट हुए हैं, तो भी ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के समान बड़े-बड़े वाचक और वक्ता भी आपके महिमामय कार्यों का सही-सही वर्णन नहीं कर सकते।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में *मायया* का अर्थ है "आपकी अहैतुकी कृपा से।" मायावादी चिन्तक माया शब्द की व्याख्या 'मोह' या असत्य कह कर करते हैं। किन्तु माया का एक दूसरा भी अर्थ है—वह है "अहैतुकी कृपा।" माया के दो प्रकार हैं— *योगमाया* तथा *महामाया*। महामाया योगमाया का विस्तार है और ये दोनों ही मायाएँ भगवान् की अन्तरंगा शक्ति की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति (*आत्म-मायया*) से उत्पन्न होते हैं; अत: हमें इस मायावादी व्याख्या को, कि भगवान् बहिरंगा शक्ति अर्थात् भौतिक शक्ति द्वारा प्रदत्त शरीर में प्रकट होते हैं, अस्वीकार कर देना चाहिए। भगवान् तथा उनका अवतार पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं और वे

कहीं भी और सर्वत्र अन्तरंगा शक्ति से उत्पन्न हो सकते हैं। यद्यपि राजा पृथु राजा वेन के तथाकथित मृत शरीर से उत्पन्न थे, किन्तु तो भी वे भगवान् की अन्तरंगा शक्ति से भगवान् के अवतार थे। भगवान् किसी भी वंश में प्रकट हो सकते हैं। कभी वे मत्स्य अवतार के रूप में, तो कभी वराह अवतार के रूप में प्रकट होते हैं। इस प्रकार भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा कहीं भी और सर्वत्र प्रकट होने के लिए मुक्त और स्वतंत्र हैं। कहा जाता है कि अनन्त मुख वाले भगवान् के ही अवतार अनन्त भी भगवान् की महिमा का वर्णन नहीं कर पाते, यद्यपि वे अनन्त काल से ऐसा करते आ रहे हैं। तो फिर ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवताओं का क्या कहना? कहा गया है कि भगवान् *शिव-विरिञ्चि-नुतम्* हैं—अर्थात् वे ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं द्वारा सदैव पूजित हैं। यदि देवताओं के पास भगवान् की महिमा को व्यक्त करने के लिए समुचित भाषा नहीं मिल पाती तो भला अन्य लोग यह कैसे कर सकते हैं? फलत: सूत तथा मागध जैसे गायक राजा पृथु के विषय में कुछ भी कहने में अशक्त थे।

उत्तम श्लोकों द्वारा भगवान् की महिमा का वर्णन करके मनुष्य शुद्ध हो जाता है। यद्यपि हम भगवान् की ठीक से स्तुति नहीं कर पाते तो भी शुद्ध होने के लिए आवश्यक है कि हम ऐसा करने का प्रयास करें। इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवता उनका ठीक से गुणगान नहीं कर पाते तो हम करें ही नहीं। अपितु, जैसाकि प्रह्लाद महाराज ने कहा है, हममें से हर एक को अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार भगवान् की महिमा का वर्णन करना चाहिए। यदि हम गम्भीर एवं निष्ठावान भक्त हैं, तो भगवान् हमें सही ढंग से प्रार्थना करने की बुद्धि प्रदान करेगा।

**अथाप्युदारश्रवस: पृथोर्हरे:**
**कलावतारस्य कथामृतादृता: ।**
**यथोपदेशं मुनिभि: प्रचोदिता:**
**श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ॥ ३॥**

शब्दार्थ

अथ अपि—तो भी; उदार—उदार; श्रवस:—जिसका यश; पृथो:—राजा पृथु का; हरे:—भगवान् विष्णु का; कला—अंश; अवतारस्य—अवतार; कथा—शब्द; अमृत—अमृतमय, मधुर; आदृता:—के प्रति सावधान; यथा—के अनुसार; उपदेशम्—उपदेश; मुनिभि:—बड़े-बड़े साधुओं द्वारा; प्रचोदिता:—प्रोत्साहित; श्लाघ्यानि—प्रशंसनीय; कर्माणि—कार्य; वयम्—हम; वितन्महि—विस्तार करने का यत्न करेंगे।

**यद्यपि हम आपका ठीक से गुणगान कर सकने में असमर्थ हैं, तो भी हमें आपके कार्यों की**

**महिमा के गायन में दिव्य स्वाद प्राप्त हो रहा है। हम प्राधिकार प्राप्त मुनियों तथा पंडितों से मिले आदेशों के अनुसार ही आपकी महिमा का वर्णन करेंगे। फिर भी हम जो कुछ कह रहे हैं, वह अपर्याप्त तथा नगण्य है। हे राजन्, चूँकि आप भगवान् के साक्षात् अवतार हैं, अतः आपके समस्त कर्म उदार तथा सदैव प्रशंसनीय हैं।**

**तात्पर्य :** कोई कितना ही दक्ष क्यों न हो, वह भगवान् की महिमा का ठीक से वर्णन नहीं कर सकता। तो भी जो भगवान् के कार्यों के गुणगान में संलग्न हैं, उन्हें ऐसा करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे प्रयास से भगवान् प्रसन्न होंगे। भगवान् चैतन्य ने अपने अनुयायियों को उपदेश दिया है कि वे सर्वत्र जाकर भगवान् कृष्ण के सन्देश का प्रचार करें। चूँकि यह संदेश मुख्यरूप से *भगवद्गीता* ही है, अतः उपदेशक को चाहिए कि *भगवद्गीता* का अध्ययन उसी रूप में करे जिस रूप में परम्परा से यह समझी जाती रही है और बड़े-बड़े मुनियों तथा विद्वान् भक्तों ने इसकी व्याख्या की है। जनता के समक्ष अपने पूर्ववर्ती साधु, गुरु तथा शास्त्रों के अनुसार ही भाषण देना चाहिए। भगवान् के गुणगान करने की यही सबसे सरल विधि है। किन्तु वास्तविक विधि भक्ति है क्योंकि भक्ति द्वारा कुछ ही शब्दों में भगवान् को प्रसन्न किया जा सकता है। भक्ति के बिना बड़े-बड़े पोथे लिखकर भी भगवान् को प्रसन्न नहीं किया जा सकता। भले ही कृष्णभावनामृत आन्दोलन के उपदेशक भगवान् की महिमा का वर्णन करने में असमर्थ हों तो भी उन्हें सर्वत्र जाकर लोगों से हरे कृष्ण जपने का अनुरोध करना चाहिए।

**एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ।**
**गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ॥ ४॥**

शब्दार्थ

एषः—यह राजा पृथु; धर्म-भृताम्—धार्मिक कर्म करनेवाले पुरुषों में; श्रेष्ठः—श्रेष्ठ; लोकम्—सारा संसार; धर्मे—धार्मिक कार्यों के; अनुवर्तयन्—ठीक से लगाये रखते हुए; गोप्ता—रक्षक; च—भी; धर्म-सेतूनाम्—धर्म के नियमों का; शास्ता—दण्ड देनेवाला; तत्-परिपन्थिनाम्—उनके विरोधियों को।.

**यह राजा, महाराज पृथु, धार्मिक नियमों के पालन करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ है। अतः वह प्रत्येक व्यक्ति को धर्म में प्रवृत्त करेगा और धर्म के उन सिद्धान्तों की रक्षा करेगा। अधर्मियों तथा नास्तिकों के लिए वह महान् दण्ड-दाता भी होगा।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में राजा अथवा सरकार के प्रधान के कर्तव्य का सुन्दर वर्णन हुआ है। सरकार के प्रधान का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि सभी लोग दृढ़तापूर्वक धार्मिक जीवन का पालन कर रहे हैं। राजा को नास्तिकों को दण्डित करने में भी कठोर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, राजा या सरकार के प्रधान को चाहिए कि नास्तिक या ईश्वरविहीन सरकार को प्रश्रय न दे। अच्छी सरकार की यही कसौटी है। धर्मनिरपेक्ष सरकार के नाम पर राजा या सरकार का प्रधान उदासीन रहता है और लोगों को सभी प्रकार के अधार्मिक कृत्य करने की छूट देता है। ऐसे राज्य में समस्त आर्थिक विकास के बावजूद लोग सुखी नहीं रह सकते। किन्तु इस कलियुग में एक भी पवित्र राजा नहीं है, अपितु चोर-उचक्कों को सरकार का प्रधान चुना जाता है। भला धर्म और ईशचेतना के बिना लोग कैसे सुखी रह सकते हैं? ये धूर्त अपनी इन्द्रिय-तुष्टि के लिए नागरिकों से मनमाना कर खसोटते हैं। भविष्य में लोग इतने तंग हो उठेंगे कि *श्रीमद्भागवत* के अनुसार वे अपने-अपने घर तथा गाँव छोड़कर जंगलों में जा बसेंगे। फिर भी कलियुग में कृष्णभावनाभावित लोगों के द्वारा प्रजातांत्रिक सरकार को कब्जे में किया जा सकता है। यदि ऐसा हो जाये तो जनता अत्यन्त सुखी हो जाये।

**एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः ।**
**काले काले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥ ५ ॥**

शब्दार्थ

एषः—यह राजा; वै—निश्चय ही; लोक-पालानाम्—समस्त देवताओं का; बिभर्ति—धारण करता है; एकः—अकेले; तनौ—अपने शरीर में; तनूः—अनेक शरीर; काले काले—यथासमय; यथा—के अनुसार; भागम्—उचित भाग; लोकयोः—लोकों का; उभयोः—दोनों; हितम्—कल्याण।

**यह राजा अकेले, अपने ही शरीर में यथासमय समस्त जीवात्माओं का पालन करने तथा विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विभिन्न देवताओं के रूप में प्रकट होकर उनको प्रसन्न रखने में समर्थ होगा। इस प्रकार वह प्रजा को वैदिक यज्ञ करने के लिए प्रेरित करके स्वर्गलोक का पालन करेगा। यथासमय वह उचित वर्षा द्वारा इस पृथ्वीलोक का भी पालन करेगा।**

**तात्पर्य :** विभिन्न कार्यों का भार उठाने वाले जो देवता इस जगत का पालन करते हैं, वे भगवान् के सहायक मात्र हैं। जब भगवान् का कोई अवतार इस लोक में आता है, तो सूर्य, चन्द्र, इन्द्र सभी

देवता उनके साथ हो लेते हैं। फलस्वरूप ईश्वर का अवतार विभिन्न देवताओं का भी कार्य सम्पन्न करते हुए लोकों को व्यवस्थित रखता है। पृथ्वीलोक की रक्षा तो उचित वर्षा पर आश्रित है और जैसाकि *भगवद्गीता* तथा अन्य शास्त्रों में कहा गया है कि वर्षा का भार सँभालने वाले देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किये जाते हैं।

*अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।*

*यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥*

''सब प्राणी अन्न से भरण-पोषण करते हैं और अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है। वर्षा की उत्पत्ति यज्ञ से होती है और यज्ञ स्वधर्म से प्रकट होता है।'' (भगवद्गीता ३.१४)

इस प्रकार यज्ञ को उचित विधि से सम्पन्न होना अनिवार्य है। जैसाकि यहाँ पर इंगित किया गया है, राजा पृथु अकेले समस्त नागरिकों को ऐसे याज्ञिक कर्म करने के लिए प्रेरित करेंगे, जिससे कोई अभाव या कष्ट न रहे। किन्तु कलियुग में, तथाकथित धर्मनिरपेक्ष राज्य में, सरकार की कार्यकारी शाखा के अध्यक्ष तथाकथित राजा और राज्याध्यक्ष हैं, जो मूर्ख तथा धूर्त हैं और प्रकृति के गूढ़ रहस्यों तथा यज्ञ के नियमों से सर्वथा अनजान हैं। ऐसे धूर्त सदैव योजनाएँ बनाते हैं, जो विफल होती रहती हैं और परिणाम स्वरूप जनता को उपद्रव सहने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए शास्त्रों का उपदेश है—

*हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्।*

*कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥*

इस प्रकार सरकार की इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिए, जनता को हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—इस महामंत्र को जपने का उपदेश दिया जाता है।

**वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुञ्चति ।**
**समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥ ६ ॥**

**शब्दार्थ**

वसु—धन; काले—समय पाकर; उपादत्ते—वसूल करता या निकालता है; काले—यथासमय; च—भी; अयम्—यह राजा पृथु; विमुञ्चति—वापस कर देता है; समः—उतना ही, बराबर; सर्वेषु—सब; भूतेषु—जीवात्माओं में; प्रतपन्—चमकते हुए; सूर्य-वत्—सूर्यदेव के समान; विभुः—शक्तिमान।

**यह राजा पृथु सूर्यदेव के समान प्रतापी होगा और जिस प्रकार सूर्यदेव हर एक को समान रूप से अपना प्रकाश वितरित करता है, उसी तरह राजा पृथु अपनी कृपा सबों को संवितरित करेगा। जिस प्रकार सूर्यदेव आठ मास तक जल को वाष्पित करता है और वर्षा ऋतु में प्रचुर मात्रा में उसको लौटा देता है, उसी प्रकार यह राजा भी नागरिकों से कर वसूल करेगा और आवश्यकता के समय इस धन को लौटा देगा।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में कर वसूल करने की विधि की सुन्दर व्याख्या हुई है। कर-वसूली तथाकथित प्राशासनिक अध्यक्षों की इन्द्रियतुष्टि के हेतु नहीं होती है। कर से प्राप्त आय को आवश्यकता पड़ने पर—यथा दुर्भिक्ष या बाढ़ के समय—नागरिकों में बाँट देना चाहिए। कर की इस आय को सरकारी नौकरों को उच्च वेतन तथा अन्य भत्ते देने में कभी भी व्यय नहीं होने देना चाहिए। किन्तु कलियुग में, नागरिकों की दशा अत्यन्त शोचनीय है, क्योंकि जनता से विविध रूपों में कर संग्रह किया जाता है, किन्तु प्रशासकों की व्यक्तिगत सुविधाओं में उसका व्यय किया जाता है।

इस श्लोक में सूर्य का उदाहरण अत्यन्त सटीक है। सूर्य पृथ्वी से लाखों मील दूर है, और यद्यपि वह पृथ्वी का स्पर्श नहीं करता तो भी सागरों से जल ग्रहण करके वर्षा ऋतु में समग्र लोक की भूमि पर इसे वितरित करके भूमि को उपजाऊ बनाता है। एक आदर्श राजा के रूप में, राजा पृथु राज्य के ग्राम-ग्राम में सूर्य के समान ही निपुणता से यह कार्य करेगा।

**तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि ।**
**भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥ ७॥**

शब्दार्थ

तितिक्षति—सहन करता है; अक्रमम्—अपराध; वैन्यः—राजा वेन का पुत्र; उपरि—सिर के ऊपर; आक्रमताम्—पद रखनेवालों को; अपि—भी; भूतानाम्—समस्त जीवात्मा के; करुणः—अत्यन्त दयालु; शश्वत्—सदैव; आर्तानाम्—दुखियों का; क्षिति-वृत्ति-मान्—पृथ्वी की वृत्ति ग्रहण करनेवाले।

**यह राजा पृथु समस्त नागरिकों पर अत्यधिक दयालु रहेगा। यदि एक दीन पुरुष विधि-विधानों की अवहेलना करके राजा के सिर पर अपना पाँव रख दे, तो भी राजा अपनी अहैतुकी**

**कृपा से उस पर ध्यान न देकर क्षमा कर देगा। जगत के रक्षक के रूप में यह पृथ्वी की ही भाँति सहिष्णु होगा।**

**तात्पर्य :** यहाँ पर राजा पृथु की सहनशीलता की तुलना पृथ्वी से की गई है। यद्यपि पृथ्वी सदैव मनुष्यों तथा पशुओं द्वारा पद-दलित होती रहती है, तो भी वह अन्न, फल, शाक इत्यादि उत्पन्न करके उन्हें भोजन देती है। आदर्श राजा के रूप में महाराज पृथु की तुलना पृथ्वी से की गई है, क्योंकि भले ही कुछ नागरिक राज्य के विधि-विधानों का उल्लंघन करें तो भी वह सहिष्णु बनकर अन्न तथा फल से उनका पालन करेगा। दूसरे शब्दों में, अपनी सुविधाओं की परवाह न करते हुए नागरिकों की सुविधाओं का ध्यान रखना राजा का कर्तव्य है। किन्तु कलियुग में ऐसा नहीं होता है। कलियुग में तो राजा तथा राज्य के प्रधान राज्य के नागरिकों से कर संग्रह करके उसका व्यय अपने सुखोपभोग में करते हैं। ऐसे अन्यायपूर्ण कर-संग्रह से लोग बेईमान हो जाते हैं और अपनी आय को तरह-तरह से छिपाने लगते हैं। अन्ततः राज्य उनसे कर संग्रह नहीं कर सकेगा और प्रभूत सैनिक तथा प्रशासनिक खर्चों की पूर्ति नहीं हो सकेगी। सारी व्यवस्था बैठ जायेगी और राज्यभर में उपद्रव तथा अशान्ति उत्पन्न हो जायेगी।

**देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः ।**
**कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जसेन्द्रवत् ॥ ८ ॥**

शब्दार्थ

देवे—तब देवता ( इन्द्र ); अवर्षति—वर्षा नहीं करता; असौ—वह; देवः—महाराज पृथु; नर-देव—राजा का; वपुः—शरीर युत; हरिः—भगवान्; कृच्छ्र-प्राणाः—दुखी जीवात्माएँ; प्रजाः—नागरिक; हि—निश्चय ही; एषः—यह; रक्षिष्यति—रक्षा करेगा; अञ्जसा—सरलतापूर्वक; इन्द्र-वत्—राजा इन्द्र के समान।.

**जब वर्षा नहीं होगी और जल के अभाव से नागरिक महान् संकट में होंगे तो यह राजवेषधारी भगवान् स्वर्ग के राजा इन्द्र के समान जल की पूर्ति करेगा। इस प्रकार अनावृष्टि ( सूखे ) से वह नागरिकों की रक्षा कर सकेगा।**

**तात्पर्य :** सूर्य तथा इन्द्रदेव से राजा पृथु की तुलना अत्यन्त उपयुक्त है। स्वर्गलोक के राजा इन्द्र पर पृथ्वी तथा अन्य लोकों में जल वितरित करने का भार है। यहाँ यह इंगित है कि इन्द्र द्वारा अपना कार्य ठीक से न किये जाने पर राजा पृथु स्वयं वर्षा-जल का वितरण कर सकेंगे। कभी-कभी स्वर्ग के राजा

इन्द्र पृथ्वीवासियों पर इसलिए कुपित हो उठते हैं, क्योंकि उन्हें प्रसन्न करने के लिए वे यज्ञ नहीं करते। किन्तु राजा पृथु, भगवान् के अवतार होने के कारण इन्द्र की कृपा पर निर्भर नहीं रहते थे। यहाँ पर भविष्यवाणी की गई है कि यदि वर्षा का अभाव हुआ तो राजा पृथु अपनी दैवी शक्ति से इस अभाव को दूर कर देंगे। ऐसी शक्ति का प्रदर्शन वृन्दावन में वास करते समय भगवान् कृष्ण द्वारा भी किया गया था। जब इन्द्र ने सात दिनों तक वृन्दावन में अखण्ड वर्षा की तो श्रीकृष्ण ने ही गोवर्धन पर्वत को छत्र की भाँति धारण करके निवासियों की रक्षा की थी। इसीलिए भगवान् कृष्ण को गोवर्धनधारी भी कहा जाता है।

**आप्याययत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ।**
**सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥ ९ ॥**

शब्दार्थ

आप्याययति—बढ़ाता है; असौ—वह; लोकम्—सम्पूर्ण संसार; वदन—अपने मुखमंडल से; अमृत-मूर्तिना—चन्द्रमा सदृश; स-अनुराग—वत्सल, प्यारी; अवलोकेन—चितवन से; विशद—चमकीली; स्मित—मन्द हास, मुसकान; चारुणा—मनोहर।

**यह राजा, पृथु महाराज, अपनी प्यारी चितवन तथा अपने चन्द्रमा सदृश मुखमंडल से, जो नागरिकों के लिए अत्यधिक प्यार से सदैव हँसता रहता है, सबों के शान्त जीवन में और वृद्धि करेगा।**

**अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो**
**गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः ।**
**अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा**
**पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥ १० ॥**

शब्दार्थ

अव्यक्त—अप्रकट; वर्त्मा—उसकी नीतियाँ; एषः—यह राजा; निगूढ—गुप्त; कार्यः—उसके कार्यकलाप; गम्भीर—गुप्त; वेधाः—सम्पन्न करने की विधि; उपगुप्त—गुप्त रखी जानेवाला; वित्तः—उसका कोष; अनन्त—अपार; माहात्म्य—महिमा का; गुण—उत्तम गुणों का; एक-धामा—एकमात्र आगार; पृथुः—राजा पृथु; प्रचेताः—समुद्रों का राजा, वरुण; इव—सदृश; संवृत—आच्छादित; आत्मा—स्वयं, स्व।

**गायकों ने आगे कहा : राजा द्वारा अपनाई गई नीतियों को कोई भी नहीं समझ सकेगा। उसके कार्य भी गुप्त रहेंगे और कोई यह न जान सकेगा कि वह प्रत्येक कार्य को किस प्रकार सफल बनाएगा। उसका कोष सदा ही लोगों से अज्ञात रहेगा। वह अनन्त महिमा तथा उत्तम गुणों**

**का आगार होगा। उसका पद स्थायी तथा प्रच्छन्न बना रहेगा जिस प्रकार कि समुद्रों के देव वरुण चारों ओर जल से ढके रहते हैं।**

**तात्पर्य :** सभी भौतिक तत्त्वों का एक-एक प्रमुख विग्रह (देव) होता है। वरुण अथवा प्रचेता सागरों का प्रधान देव है। बाहर से समुद्र जीवन-विहीन लगते हैं, किन्तु समुद्र-शास्त्री जानता है कि उनके जल के भीतर नाना प्रकार के जीव हैं। इस जल के अधोराज्य का राजा वरुण है। जिस प्रकार कोई यह नहीं जान पाता कि समुद्र के नीचे क्या हो रहा है, उसी प्रकार कोई यह नहीं समझ पा रहा था कि राजा पृथु कौनसी नीतियाँ अपना कर प्रत्येक काम को बन रहे थे। निस्सन्देह राजा पृथु की कूटनीति अत्यन्त गम्भीर थी। उनकी सफलता का कारण था उनका अनन्त उत्तम गुणों का आगार होना।

इस श्लोक में *उपगुप्त वित्त:* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे सूचित होता है कि कोई यह नहीं जान पाएगा कि राजा पृथु के पास गुप्त रीति से कितना धन है। कहने का उद्देश्य यह है कि न केवल राजा को वरन् हर व्यक्ति को अपनी गाढ़ी कमाई गुप्त रीति से रखनी चाहिए जिससे आवश्यकता के समय उसका सदुपयोग हो सके। किन्तु कलियुग में राजा या सरकार के पास सुरक्षित कोष नहीं रहता और कागज के बने नोट ही मुद्रा-विनिमय के साधन हैं। इस प्रकार विपत्ति आने पर सरकार नोटें छाप कर कृत्रिम मुद्रास्फीति कर देती है, जिससे वस्तुओं के मूल्य कृत्रिम रूप से बढ़ जाते हैं और नागरिकों की सामान्य स्थिति शोचनीय हो जाती है। धन को गुप्त रखना पुरानी प्रथा है, क्योंकि हम देखते हैं कि महाराज पृथु के समय में भी यह प्रथा प्रचलित थी। जिस प्रकार राजा को अपना कोष गुप्त रखने का अधिकार है उसी प्रकार मनुष्यों को चाहिए कि वे अपनी कमाई को गुप्त रखें। ऐसा करना कोई दोष नहीं। मुख्य बात यह है कि हर एक को *वर्णाश्रम-धर्म-प्रणाली* की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे धन का व्यय केवल अच्छे कार्यों में किया जा सके।

**दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ।**
**नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनल: ॥ ११ ॥**

शब्दार्थ

दुरासद:—पास तक न पहुँचा जाने योग्य; दुर्विषह:—दु:सह; आसन्न:—समीप होकर; अपि—यद्यपि; विदूर-वत्—मानो अत्यन्त दूर; न—कभी नहीं; एव—निश्चय ही; अभिभवितुम्—जीते जा सकने के लिए; शक्य:—समर्थ; वेन—राजा वेन; अरणि—अग्नि उत्पन्न करनेवाले काष्ठ से; उत्थित:—उत्पन्न; अनल:—अग्नि।

**राजा पृथु का जन्म राजा वेन के मृत शरीर से उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार अरणि से अग्नि उत्पन्न होती है। अतः राजा पृथु सदैव अग्नि के समान रहेंगे और उनके शत्रु उनके पास तक नहीं पहुँच पाएँगे। निस्सन्देह, वे अपने शत्रुओं के लिए दुःसह होंगे, वे उनके पास रह कर भी उनके पास नहीं पहुँच पाएंगे, मानो वे दूर रहने के लिए बने हो। कोई भी राजा पृथु को हरा नहीं सकेगा।**

**तात्पर्य :** *अरणि* एक प्रकार का काष्ठ है, जो घर्षण द्वारा अग्नि उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता है। यज्ञ सम्पन्न करते समय अरणि-काष्ठ से अग्नि जलाई जा सकती है। यद्यपि राजा पृथु अपने मृत पिता से उत्पन्न थे, किन्तु वे सदैव अग्नि जैसे बने रहेंगे। जिस प्रकार अग्नि के पास आसानी से नहीं जाया जा सकता, उसी प्रकार राजा पृथु के शत्रु, भले ही देखने में वे उनके निकट प्रतीत हों, उन तक पहुँच नहीं पाएँगे।

**अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः ।**
**उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥ १२ ॥**

शब्दार्थ

अन्तः—आन्तरिक रूप से; बहिः—बाह्य रूप से; च—तथा; भूतानाम्—जीवात्माओं का; पश्यन्—देखते हुए; कर्माणि—कार्य; चारणैः—गुप्तचरों द्वारा; उदासीनः—निरपेक्ष; इव—सदृश; अध्यक्षः—साक्षी; वायुः—प्राणवायु; आत्मा—प्राणशक्ति; इव—सदृश; देहिनाम्—समस्त देहधारियों की।

**राजा पृथु अपने प्रत्येक नागरिक के आन्तरिक तथा बाह्य कार्यों को देख सकने में समर्थ होंगे। फिर भी उनकी गुप्तचर व्यवस्था को कोई जान नहीं सकेगा और वे अपनी स्तुति अथवा निन्दा-सम्बन्धी मामलों में सदैव उदासीन रहेंगे। वे शरीर के भीतर स्थित वायु, अर्थात् प्राण के समान होंगे, जो बाह्य तथा आन्तरिक रूप से प्रकट होता है, किन्तु सभी व्यापारों से सदैव निरपेक्ष रहता है।**

**नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि ।**
**दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥ १३ ॥**

शब्दार्थ

न—नहीं; अदण्ड्यम्—अदण्डनीय; दण्डयति—दण्ड देता है; एषः—यह राजा; सुतम्—पुत्र; आत्म-द्विषाम्—अपने शत्रुओं को; अपि—भी; दण्डयति—दण्ड देता है; आत्म-जम्—अपना पुत्र; अपि—भी; दण्ड्यम्—दण्डनीय; धर्म-पथे—धर्मनिष्ठा के मार्ग पर; स्थितः—स्थित होकर।

**चूँकि यह राजा सदैव धर्मनिष्ठा के मार्ग पर रहेगा, अतः वह अपने पुत्र तथा अपने शत्रु के पुत्र दोनों के प्रति समभाव रखेगा। यदि उसके शत्रु का पुत्र दण्डनीय नहीं है, तो वह उसे दण्ड नहीं देगा, किन्तु यदि स्वयं का पुत्र दण्डनीय है, तो उसे दंडित करेगा।**

**तात्पर्य :** ये निष्पक्ष शासक के लक्षण हैं। शासक का कर्तव्य है कि वह अपराधी को दण्ड दे और निर्दोष को प्रश्रय दे। राजा पृथु इतने निरपेक्ष थे कि यदि उनका अपना पुत्र भी दण्डनीय हो तो उसे दण्ड देने में नहीं हिचकते थे। दूसरी ओर यदि उनके शत्रु का पुत्र निर्दोष हो तो उसे दण्ड देने के उद्देश्य से किसी मामले में नहीं फंसाते थे।

**अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ।**
**वर्तते भगवानर्को यावत्तपति गोगणैः ॥ १४॥**

शब्दार्थ

अस्य—इस राजा का; अप्रतिहतम्—न रुकनेवाला; चक्रम्—प्रभाव का वृत्त; पृथोः—राजा पृथु के; आ-मानस-अचलात्—मानस पर्वत तक; वर्तते—है; भगवान्—परम शक्तिमान; अर्कः—सूर्यदेव; यावत्—जिस प्रकार; तपति—चमकता है; गो-गणैः—प्रकाश की किरणों से।

**जिस प्रकार सूर्यदेव अपनी प्रकाशमान रश्मियों को आर्कटिक प्रदेश तक बिना किसी अवरोध के बिखेरते हैं, उसी प्रकार राजा पृथु का प्रभाव आर्कटिक क्षेत्र तक के समस्त भूभागों पर होगा और वह आजीवन अविचल रहेगा।**

**तात्पर्य :** यद्यपि सामान्य जनों को आर्कटिक प्रदेश नहीं दिखता, किन्तु सूर्य वहाँ बिना रोक-टोक के चमकता है। जिस प्रकार कोई भी मनुष्य सूर्य-प्रकाश को विश्व-भर में फैलने से नहीं रोक सकता उसी प्रकार राजा पृथु के शासन तथा प्रभाव को कोई नहीं रोक सकता। वह तो आजीवन अविचलित रहेगा। निष्कर्ष यह है कि न तो सूर्य तथा उसके प्रकाश को एक दूसरे से विलग किया जा सकता है, न ही राजा पृथु को उसकी शासन-शक्ति से। हर व्यक्ति के ऊपर उसका शासन अविचल भाव से चलता रहेगा। इस प्रकार राजा को उसकी शासन-शक्ति से पृथक् नहीं किया जा सकता था।

**रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ।**
**अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥ १५ ॥**

शब्दार्थ

रञ्जयिष्यति—प्रसन्न करेगा; यत्—क्योंकि; लोकम्—समग्र संसार; अयम्—यह राजा; आत्म—निजी; विचेष्टितैः—कार्यों द्वारा; अथ—अतः; अमुम्—उसको; आहुः—कहते हैं; राजानम्—राजा; मनः-रञ्जनकैः—मन को अच्छा लगनेवाला; प्रजाः—नागरिक।

**यह राजा अपने व्यावहारिक कार्यों द्वारा सबों को प्रसन्न करेगा और उसके सारे नागरिक अत्यन्त प्रसन्न होंगे। इस कारण नागरिकों को उसे अपना शासक राजा स्वीकार करने में अत्यधिक सन्तोष मिलेगा।**

**दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ।**
**शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥ १६ ॥**

शब्दार्थ

दृढ-व्रतः—दृढ़संकल्प वाला; सत्य-सन्धः—सत्य-प्रतिज्ञ; ब्रह्मण्यः—ब्राह्मण संस्कृति का प्रेमी; वृद्ध-सेवकः—वृद्ध पुरुषों का दास; शरण्यः—शरणागत-वत्सल; सर्व-भूतानाम्—समस्त जीवात्माओं का; मान-दः—सबों का सम्मान करनेवाला; दीन-वत्सलः—दीनों तथा अनाथों पर अत्यधिक दयालु।

**यह राजा दृढ़संकल्प वाला तथा सत्यव्रती होगा। यह ब्राह्मण-संस्कृति का प्रेमी, वृद्धों की सेवा करने वाला तथा शरणागतों को प्रश्रय देने वाला होगा। यह सबों का सम्मान करेगा और दीन-दुखियों तथा अबोधों पर सदैव कृपालु रहेगा।**

**तात्पर्य** : *वृद्ध-सेवकः* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वृद्ध पुरुष दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो आयु से वृद्ध हैं और दूसरे वे जो ज्ञान से वृद्ध हैं। संस्कृत के ये दो शब्द से स्पष्ट है कि मनुष्य ज्ञानोन्नति से भी वृद्ध हो सकता है। राजा पृथु ब्राह्मणों का आदर करने वाला था और उनकी रक्षा करता था। वह वृद्ध लोगों की भी रक्षा करता था। राजा जो भी करने का निश्चय करता उसे कोई बदल नहीं सकता था। इसीको दृढ़संकल्प या दृढ़व्रत कहा जाता है।

**मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ।**
**प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किङ्करो ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७॥**

शब्दार्थ

मातृ-भक्तिः—अपनी माता के समान आदर करने वाला; पर-स्त्रीषु—पराई स्त्री के प्रति; पत्न्याम्—अपनी पत्नी को; अर्धः—आधा; इव—सदृश; आत्मनः—अपने शरीर का; प्रजासु—नागरिकों के प्रति; पितृ-वत्—पिता के समान; स्निग्धः—स्नेही; किङ्करः—दास; ब्रह्म-वादिनाम्—भगवान् की महिमा का उपदेश करने वाले भक्तों का।

**यह राजा सभी स्त्रियों को अपनी माता के समान सम्मान देगा और अपनी पत्नी को अपने शरीर का आधा अंग ( अर्द्धाङ्गिनी ) मानेगा। यह अपनी प्रजा के प्रति पिता के समान स्नेही होगा और अपने आपको भगवान् की महिमा का उपदेश करने वाले भक्तों का परम आज्ञाकारी दास समझेगा।**

**तात्पर्य :** विद्वान् मनुष्य अपनी पत्नी के अतिरिक्त सारी स्त्रियों को अपनी माता के समान मानता है, अन्यों की सम्पत्ति को गली में पड़ा कूड़ा समझता है और अन्यों के साथ ऐसा ही व्यवहार करता है जैसा वह अपने साथ करता है। ये विद्वान् पुरुष के लक्षण हैं, जिनका उल्लेख चाणक्य पंडित ने किया है। शिक्षा का यही मानदण्ड होना चाहिए। शिक्षा का अर्थ शैक्षिक उपाधियाँ प्राप्त करना ही नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि उसने जो कुछ अपने व्यक्तिगत जीवन में सीखा है, उसे कार्यरूप में परिणत करे। विद्वानों के ये लक्षण राजा पृथु के जीवन में प्रकट थे। राजा होकर भी वह अपने को भगवान् के भक्तों का दास मानता था। वैदिक शिष्टाचार के अनुसार यदि कोई भक्त राजपासाद में जाता तो राजा उसे तुरन्त अपना आसन प्रदान करता था। *ब्रह्मवादिनाम्* शब्द अत्यन्त सार्थक है। ब्रह्मवादी का अर्थ है भगवान् का भक्त। ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् ये परब्रह्म के विविध नाम हैं। परब्रह्म तो श्रीकृष्ण हैं। इसे *भगवद्गीता* (१०.१२) में अर्जुन ने स्वीकार किया है ( *परं ब्रह्म परं धाम्*)। इस प्रकार *ब्रह्मवादिनाम्* भगवान् के भक्तों का सूचक है। राज्य को चाहिए कि भगवान् के भक्तों की सदा सेवा करे और आदर्श राज्य को चाहिए कि भक्त के आदेशों के अनुसार अपना संचालन करे। चूँकि राजा पृथु ने इस नियम का पालन किया, इसलिए उसकी अत्यन्त प्रशंसा की जाती है।

**देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः ।**
**मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥ १८ ॥**

शब्दार्थ

देहिनाम्—समस्त शरीरधारी जीवों को; आत्म-वत्—अपने समान; प्रेष्ठः—प्रिय मानते हुए; सुहृदाम्—मित्रों का; नन्दि-वर्धनः—आनन्द बढ़ाते हुए; मुक्त-सङ्ग—समस्त भौतिक कल्मष से रहित पुरुषों के साथ; प्रसङ्गः—घनिष्ठतःसम्बन्धित; अयम्—यह राजा; दण्ड-पाणिः—दण्ड देने वाला हाथ; असाधुषु—अपराधियों को।.

**यह राजा समस्त जीवधारी प्राणियों को अपने ही समान प्रिय मानेगा और अपने मित्रों के आनन्द को सदैव बढ़ाने वाला होगा। यह मुक्त पुरुषों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहेगा और**

**समस्त अपवित्र व्यक्तियों को कठोर दण्ड देने वाला होगा।**

**तात्पर्य :** *देहिनाम्* शब्द का अर्थ है वे जो देह से युक्त हैं। जीवात्माएँ विभिन्न योनियों में देह धारण करती हैं, जिनकी संख्या चौरासी लाख है। राजा इन समस्त प्राणियों को आत्मवत् मानता था। किन्तु इस युग में तथाकथित राजा तथा राजाध्यक्ष अन्य जीवात्माओं को अपने समान नहीं मानते। उनमें से अधिकांश मांसाहारी होते हैं और भले ही वे मांसाहारी न हों और अपने को धार्मिक तथा पवित्र बताते हों, किन्तु तो भी वे अपने राज्य में गो-वध की अनुमति देते हैं। ऐसे पापी राजाध्यक्ष कभी भी लोकप्रिय नहीं हो सकते। दूसरा महत्त्वपूर्ण शब्द *मुक्त-सङ्ग-प्रसङ्गः* है, जो यह सूचित करता है कि राजा सदैव मुक्त पुरुषों की संगति करता था।

**अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः**
**कूटस्थ आत्मा कलयावतीर्णः ।**
**यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं**
**पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥ १९ ॥**

शब्दार्थ

अयम्—यह राजा; तु—तब; साक्षात्—प्रत्यक्ष; भगवान्—भगवान्; त्रि-अधीशः—तीनों लोकों का स्वामी; कूट-स्थः—बिना किसी परिवर्तन के; आत्मा—परमात्मा; कलया—आंशिक विस्तार से; अवतीर्णः—अवतरित; यस्मिन्—जिसमें; अविद्या-रचितम्—अज्ञान से उत्पन्न; निरर्थकम्—अर्थरहित; पश्यन्ति—देखते हैं; नानात्वम्—विविधता; अपि—निश्चय ही; प्रतीतम्—मिथ्या, अप्रकट।

**यह राजा तीनों लोकों का स्वामी है और सीधे भगवान् ने इसे शक्ति प्रदान की है। यह अपरिवर्तनीय है और परमेश्वर का शक्त्यावेश अवतार है। मुक्त आत्मा तथा परम विद्वान् होने के कारण यह समस्त भौतिक विविधताओं को अर्थहीन मानता है, क्योंकि इनका मूलाधार अविद्या है।**

**तात्पर्य :** इन स्तुतियों के गायक पृथु महाराज के दिव्य गुणों का वर्णन कर रहे हैं। इन गुणों का सारांश *साक्षाद् भगवान्* इन दो शब्दों में निहित है। इससे सूचित होता है कि महाराज पृथु साक्षात् भगवान् हैं, अतः उनमें अनन्त सद्गुण हैं, किन्तु भगवान् के अवतार होने के कारण अन्य कोई इन सर्वोत्तम गुणों में महाराज पृथु की समता नहीं कर सकते। भगवान् छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं और राजा पृथु में भी इतनी शक्ति है कि वे भगवान् के छहों ऐश्वर्यों को पूर्ण रूप से प्रदर्शित कर सकते थे।

कूटस्थ शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है ''बिना परिवर्तन के।'' जीवात्माएँ दो प्रकार की हैं—*नित्यमुक्त* तथा *नित्य-बद्ध*। नित्यमुक्त कभी नहीं भूलता कि वह भगवान् का नित्य दास है। जो अपने पद को नहीं भूलता और यह जानता रहता है कि वह परमेश्वर का भिन्नांश है, वह नित्यमुक्त है। ऐसा नित्यमुक्त जीवात्मा परमात्मा का अंश-रूप होता है। जैसाकि वेदों में कहा गया है—नित्यो नित्यानाम्। इस प्रकार नित्यमुक्त जीवात्मा जानता है कि वह परम नित्य या नित्य परमेश्वर का विस्तार है। ऐसे पद में स्थित होकर वह भौतिक जगत को भिन्न दृष्टि से देखता है। नित्यबद्ध जीवात्मा भौतिक विविधताओं को वास्तव में एक दूसरे से भिन्न देखता है। इस सम्बन्ध में हमें स्मरण रखना चाहिए कि बद्धजीव का शरीर वस्त्र के समान माना जाता है। मनुष्य चाहे तो विविध वस्त्र धारण कर सकता है, किन्तुजो यथार्थ ज्ञानी है, वह वस्त्रों पर ध्यान नहीं देता। जैसा कि *भगवद्गीता* (५.१८) में कहा गया है—

*विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।*

*शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:॥*

''यथार्थ ज्ञानी विद्या-विनययुक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल को समान रूप से देखते हैं।''

इस प्रकार ज्ञानी पुरुष जीवात्मा को बाहर से ढकनेवाले वस्त्रों को न देखकर नाना प्रकार के वस्त्रों के भीतर की शुद्ध आत्मा को देखता है और यह अच्छी तरह जानता है कि नाना प्रकार के वस्त्र अविद्याजन्य हैं (*अविद्यारचितम्*)। शक्त्यावेश अवतार होने के कारण पृथु महाराज ने अपनी आत्म-स्थिति नहीं बदली, अत: उनके द्वारा भौतिक जगत को सत्य मानने की कोई सम्भावना नहीं थी।

**अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रे-**
**गोंप्तैकवीरो नरदेवनाथ: ।**
**आस्थाय जैत्रं रथमात्तचाप:**
**पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्क: ॥ २०॥**

शब्दार्थ

अयम्—यह राजा; भुव:—जगत का; मण्डलम्—गोलक; आ-उदय-अद्रे:—उदयाचल से, जहाँ सबसे पहले सूर्य दिखता है; गोप्ता—रक्षा करेगा; एक—अद्वितीय; वीर:—शक्तिशाली; नर-देव—समस्त राजाओं का, मानव समाज में देवों का; नाथ:—स्वामी; आस्थाय—स्थित होकर; जैत्रम्—विजयी; रथम्—उसका रथ; आत्त-चाप:—धनुष धारण करते हुए; पर्यस्यते—प्रदक्षिणा करेगा; दक्षिणत:—दक्षिण दिशा से; यथा—जिस प्रकार; अर्क:—सूर्य।

**यह राजा अद्वितीय शक्तिशाली तथा वीर होगा, जिससे इसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं होगा। यह अपने हाथ में धनुष धारण करके विजयी रथ पर चढ़कर सूर्य के समान दिखाई देता हुआ भूमण्डल की प्रदक्षिणा करेगा, जो दक्षिण से अपनी कक्षा पर परिभ्रमण करता है।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक के *यथार्क:* शब्द से सूचित होता है कि सूर्य स्थिर नहीं है, वरन् अपनी उस कक्षा पर भ्रमण करता है, जिसे भगवान् ने नियत कर रखा है। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* तथा *श्रीमद्भागवत* के अन्य अंशों से भी होती है।*भागवत* के पंचम स्कंध में कहा गया है कि सूर्य अपनी कक्षा पर सोलह हजार मील प्रति सेकंड की गति से घूम रहा है। इसी प्रकार *ब्रह्म-संहिता का कथन है*—यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्र:—सूर्य अपनी कक्षा में भगवान् के आदेशानुसार घूमता है। निष्कर्ष यह निकला कि सूर्य किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं है। जहाँ तक पृथु महाराज का प्रश्न है, यहाँ यह सूचित होता है उनकी शासन-शक्ति संसार भर में फैलेगी। हिमालय पर्वत को उदयाचल या उदयाद्रि कहा जाता है क्योंकि यहीं सूर्योदय सर्वप्रथम दिखता है। यहाँ यह कहा गया है कि पृथ्वी पर पृथु महाराज का शासन हिमालय पर्वत को भी लाँघ करके समुद्रों तक फैलेगा। दूसरे शब्दों में, उसका राज्य समस्त लोक में होगा।

इस श्लोक का दूसरा महत्त्वपूर्ण शब्द *नरदेव* है। जैसाकि पिछले श्लोकों में वर्णित है, योग्य राजा, चाहे वह राजा पृथु हो या अन्य कोई, जो राज्य पर आदर्श राजा की भाँति शासन करता है उसे मनुष्य रूप में ईश्वर समझना चाहिए। वैदिक संस्कृति के अनुसार राजा को भगवान् के समान सम्मानित किया जाता है क्योंकि वह नारायण का प्रतिनिधि होता है, जो नागरिकों की रक्षा भी करता है। इसलिए उसे नाथ अर्थात् स्वामी भी कहा जाता है। यहाँ तक कि सनातन गोस्वामी भी नवाब हुसेन शाह को नरदेव के समान सम्मान देते थे यद्यपि नवाब एक मुसलमान था। अत: राजा या राज्य-प्रधान को राज्य पर शासन करने में इतना दक्ष होना चाहिए कि नागरिक उसे मानव रूप में ईश्वर की भाँति पूजें। किसी भी सरकार या राज्य के अध्यक्ष की यही सिद्ध अवस्था है।

**अस्मै नृपाला: किल तत्र तत्र**
**बलिं हरिष्यन्ति सलोकपाला: ।**

**मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं**
**चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः ॥ २१ ॥**

शब्दार्थ

अस्मै—उसको; नृ-पालाः—समस्त राजा; किल—निश्चय ही; तत्र तत्र—जहाँ जहाँ; बलिम्—उपहार, भेंट; हरिष्यन्ति—प्रदान करेंगे; स—सहित; लोक-पालाः—देवता; मंस्यन्ते—मानेगा; एषाम्—इन राजाओं का; स्त्रियः—पत्नियाँ; आदि-राजम्—पहला राजा; चक्र-आयुधम्—चक्ररूपी हथियार को; तत्—उसका; यशः—ख्याति; उद्धरन्त्यः—धारण किये।

**जब यह राजा सारे संसार में भ्रमण करेगा तो अन्य राजा तथा अन्य देवतागण इसे सभी प्रकार के उपहार भेंट करेंगे। उनकी रानियां भी उसे आदि राजा मानेंगी, जो अपने हाथों में चक्र तथा गदा चिह्नों को धारण करता है और उसी के गुणगान करेंगी, क्योंकि वह भगवान् के समान ख्याति वाला होगा।**

**तात्पर्य :** जहाँ तक ख्याति का प्रश्न है राजा पृथु पहले से भगवान् के अवतार रूप में ज्ञात थे। आदि राजम् शब्द का अर्थ है "मूल राजा।" मूल राजा तो नारायण या भगवान् विष्णु हैं। लोग नहीं जानते कि मूल राजा या नारायण समस्त जीवात्माओं के रक्षक हैं। जैसाकि वेदों में पुष्टि की गई है—*एको बहूनां यो विदधाति कामान्* (कठोपनिषद् २.२.१३)। वास्तव में भगवान् समस्त जीवात्माओं का पालन करते हैं। राजा या नरदेव उनका प्रतिनिधि है, अतः राजा का कर्तव्य है कि वह जीवात्माओं के पालन हेतु सम्पत्ति के वितरण पर स्वयं निगाह रखे। यदि वह ऐसा करता है, तो वह नारायण के समान विख्यात होगा। जैसाकि इस श्लोक में उल्लेख है (*तद् यशः*) पृथु महाराज में भगवान् की ख्याति विद्यमान थी क्योंकि वे सारे संसार पर वास्तव में उसी हैसियत से राज्य कर रहे थे।

**अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः**
**प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ।**
**यो लीलयाद्रीन्स्वशरासकोट्या**
**भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥ २२ ॥**

शब्दार्थ

अयम्—यह राजा; महीम्—पृथ्वी को; गाम्—गाय के रूप में; दुदुहे—दुहेगा; अधिराजः—अद्वितीय राजा; प्रजा-पतिः—मनुष्य का जनक; वृत्ति-करः—जीवन सुविधाएँ प्रदान करते हुए; प्रजानाम्—नागरिकों की; यः—जो; लीलया—खेल-खेल में; अद्रीन्—पर्वत; स्व-शरास—अपने बाण की; कोट्या—नोक से; भिन्दन्—विदीर्ण करके; समाम्—समतल; गाम्—पृथ्वी को; अकरोत्—करेगा; यथा—जैसे; इन्द्रः—स्वर्ग का राजा इन्द्र।

**प्रजा का पालक यह राजा अद्वितीय है और प्रजापति देवों के तुल्य है। प्रजा के जीवन-निर्वाह के लिए यह गौ रूपी पृथ्वी का दोहन करेगा। यही नहीं, यह अपने बाण की नोक से**

**समस्त पर्वतों को विदीर्ण करके धरती को वैसे ही समतल करेगा, जिस प्रकार स्वर्ग का राजा इन्द्र अपने प्रबल वज्र से पर्वतों को तोड़ता है।**

**विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं**
**यदाचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ।**
**तदा निलिल्युर्दिशि दिश्यसन्तो**
**लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥ २३॥**

शब्दार्थ

विस्फूर्जयन्—टंकार करते हुए; आज-गवम्—बकरों तथा बैलों के सींगों से बना हुआ; धनुः—अपना धनुष; स्वयम्—स्वयं; यदा—जब; अचरत्—विचरण करेगा; क्ष्माम्—पृथ्वी पर; अविषह्यम्—दुर्धर, बिना रोक के; आजौ—युद्ध में; तदा—उस समय; निलिल्युः—छिप जाएँगे; दिशि दिशि—चारों दिशाओं में; असन्तः—आसुरी लोग; लाङ्गूलम्—पूँछ को; उद्यम्य—ऊँची करके; यथा—जिस प्रकार; मृगेन्द्रः—सिंह।

**जब सिंह अपनी पूँछ ऊपर उठाकर वन में विचरण करता है, उस समय छोटे-छोटे पशु छिप जाते हैं। इसी प्रकार जब राजा पृथु अपने राज्य में भ्रमण करेंगे और बकरों तथा बैलों के सींगों से बने अपने धनुष की टंकार करेंगे जिसका युद्ध में कोई सामना नहीं कर सकता, तो सभी आसुरी धूर्त तथा चोर चारों दिशाओं में छिप जाएँगे।**

**तात्पर्य :** पृथु जैसे राजा की तुलना सिंह से करना अत्यन्त उपयुक्त है। भारत में क्षत्रिय राजा *सिंह* कहलाते हैं। जब तक राज्य के धूर्त, चोर तथा अन्य आसुरी लोग राज करनेवाले बलवान शक्तिशाली प्रशासक अध्यक्ष से डरते नहीं, तब तक राज्य में शान्ति या सम्पन्नता नहीं हो सकती। इस तरह यदि सिंह सदृश राजा के स्थान पर कोई स्त्री प्रशासक अध्यक्ष बन जाय तो यह अत्यन्त खेदपूर्ण होगा। ऐसी परिस्थिति में लोगों को अभागा माना जाता है।

**एषोऽश्वमेधाञ्शतमाजहार**
**सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ।**
**अहार्षीद्यस्य हयं पुरन्दरः**
**शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥ २४॥**

शब्दार्थ

एषः—यह राजा; अश्वमेधान्—अश्वमेध यज्ञ; शतम्—एक सौ; आजहार—करेगा; सरस्वती—सरस्वती नदी; प्रादुरभावि—प्रकट होती है; यत्र—जहाँ; अहार्षीत्—चुराएगा; यस्य—जिसका; हयम्—घोड़ा; पुरन्दरः—इन्द्र; शत-क्रतुः—जिसने सौ यज्ञ किये हैं; चरमे—अन्तिम यज्ञ में; वर्तमाने—वर्तमान।

**यह राजा सरस्वती नदी के उद्गम स्थान पर सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा। अन्तिम यज्ञ के समय, स्वर्ग का राजा इन्द्र यज्ञ के घोड़े को चुरा लेगा।**

**एष स्वसद्मोपवने समेत्य**
**सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ।**
**आराध्य भक्त्यालभतामलं तज्**
**ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥ २५ ॥**

शब्दार्थ

एषः—यह राजा; स्व-सद्म—अपने महल में; उपवने—उद्यान में; समेत्य—भेंट करके; सनत्-कुमारम्—सनत्कुमार; भगवन्तम्—पूज्य; एकम्—अकेले; आराध्य—पूजकर; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; अलभत—प्राप्त करेगा; अमलम्—कल्मषरहित, निर्मल; तत्—वह; ज्ञानम्—दिव्य ज्ञान; यतः—जिससे; ब्रह्म—आत्मा; परम्—परम दिव्य; विदन्ति—जानते हैं, भोगते हैं।

**यह राजा पृथु अपने प्रासाद के उद्यान में चार कुमारों में से एक, सनत्कुमार से भेंट करेगा। राजा उनकी भक्तिपूर्वक पूजा करेगा और उनसे सौभाग्यवश उपदेश प्राप्त करेगा जिससे मनुष्य दिव्य आनन्द उठा सकता है।**

**तात्पर्य :** *विदन्ति* शब्द का अर्थ है, वह जो किसी वस्तु को जानता है या उसका आनन्द उठाता है। जब मनुष्य को गुरु से सही ढंग से उपदेश प्राप्त होता है, तथा वह दिव्य आनन्द को समझता है, तो वह जीवन का सुख पा सकता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.५४) में कहा गया है—*ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति*—जब ब्रह्मपद प्राप्त होता है, तो मनुष्य के न कोई आकांक्षा रह जाती है और न उसे शोक होता है। वह वास्तव में दिव्य आनन्द उठाता है। यद्यपि राजा पृथु विष्णु का अवतार था, वह अपनी प्रजा को शिष्य-परम्परा से आये गुरु से उपदेश ग्रहण करने की शिक्षा देता था। इस प्रकार कोई भी इसी भौतिक जगत में रहते हुए आनन्दमय जीवन बिताने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है। इस श्लोक में आगत *विदन्ति* क्रिया का अर्थ कभी-कभी "जानते हैं" किया जाता है। इस प्रकार जब कोई व्यक्ति ब्रह्म को अर्थात् प्रत्येक वस्तु के आदि-स्रोत को जानता है, तो वह आनन्दमय जीवन बिताता है।

**तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ।**
**श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ २६ ॥**

शब्दार्थ

तत्र तत्र—जहाँ जहाँ; गिरः—शब्द; ताः ताः—अनेक, विविध; इति—इस प्रकार; विश्रुत-विक्रमः—जिसके वीरता के कार्य दूर-दूर तक विख्यात हों; श्रोष्यति—सुनेगा; आत्म-आश्रिताः—अपने विषय में; गाथाः—गीत, आख्यान; पृथुः—राजा पृथु; पृथु-पराक्रमः—स्पष्टतः शक्तिमान।

**इस प्रकार जब इस राजा के वीरतापूर्ण कार्य जनता के समक्ष आ जाएँगे तो यह राजा अपने विषय में तथा अपने अद्वितीय पराक्रमपूर्ण कार्यों के विषय में सदैव सुनेगा।**

**तात्पर्य :** अपने विषय में झूठा विज्ञापन करके तथाकथित ख्याति प्राप्त करना एक प्रकार का छल है। पृथु महाराज अपने पराक्रम के कारण जनता में विख्यात थे। उन्हें कृत्रिम रूप से आत्म-विज्ञापन करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। किसी की वास्तविक ख्याति छिपाई नहीं जा सकती।

**दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः**
**स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ।**
**सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमान-**
**महानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥ २७॥**

शब्दार्थ

दिशः—सभी दिशाएँ; विजित्य—जीतकर; अप्रतिरुद्ध—बिना रोक के; चक्रः—प्रभाव या शक्ति; स्व-तेजसा—अपने तेज से; उत्पाटित—उच्छेदित, निकाला हुआ; लोक-शल्यः—जनता के दुख; सुर—देवताओं का; असुर—असुरों का; इन्द्रैः—प्रमुखों द्वारा; उपगीयमान—प्रशंसित होकर; महा-अनुभावः—महा-पुरुष; भविता—होगा; पतिः—स्वामी; भुवः—जगत का।

**पृथु महाराज की आज्ञाओं का उल्लंघन कोई नहीं कर सकेगा। सारे जगत को जीतकर वह नागरिकों के तीनों तापों को समूल नष्ट करेगा। तब सारे जगत में उसको मान्यता प्राप्त होगी। तब सुर तथा असुर दोनों उसके उदार कार्यों की निस्सन्देह प्रशंसा करेंगे।**

**तात्पर्य :** राजा पृथु के काल में यद्यपि अनेक अधीनस्थ राज्य थे, किन्तु सारे संसार पर राज्य करनेवाला एक सम्राट होता था। जिस प्रकार संसार के विभिन्न भागों में अनेक संयुक्त राज्य हैं उसी तरह प्राचीन काल में अनेक राज्यों के माध्यम से संसार पर शासन चलाया जाता था, किन्तु एक सर्वोच्च सम्राट होता था, जो समस्त अधीनस्थ राज्यों पर शासन करता था। जैसे ही छोटे-छोटे राज्यों में वर्णाश्रम-पद्धति के पालन में कोई त्रुटि आती, सम्राट उन्हें तुरन्त अपने अधीन कर लेता था।

*उत्पाटित लोकशल्यः* शब्द यह सूचित करता है कि महाराज पृथु ने अपनी प्रजा के समस्त कष्टों को समूल नष्ट कर दिया था। शल्य का अर्थ है ''चुभनेवाले काँटे।'' राज्य के नागरिकों को कई प्रकार के काँटे चुभते रहते हैं, किन्तु समस्त चतुर शासक, यहाँ तक कि महाराज युधिष्ठिर के शासन काल तक

भी, नागरिकों के कष्टों को दूर करते थे। कहा जाता है कि महाराज युधिष्ठिर के शासन में न तो कठिन शीत पड़ती थी, न झुलसाती गर्मी, न ही नागरिकों को कोई मानसिक चिन्ता थी। अच्छी सरकार का यही आदर्श है। पृथु महाराज ने ऐसी ही शान्त, सम्पन्न तथा चिन्तामुक्त सरकार की स्थापना की थी। इस प्रकार सुर तथा असुर दोनों ही महाराज पृथु के कार्यकलापों का गुणानुवाद करते थे। जो व्यक्ति या राष्ट्र सारे विश्व में अपना प्रभाव जताना चाहते हैं, उन्हें इस बात पर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई नागरिकों के तीनों तापों को समूल नष्ट कर सकता है, तो उसे ही संसार पर राज्य करने की आकांक्षा रखनी चाहिए। मनुष्य को किसी राजनीतिक या कूटनीतिक विचार से राज्य करने की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए।

*इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चर्तुथ स्कन्ध के अन्तर्गत ''बन्दीजनों द्वारा राजा पृथु की स्तुति'' नामक सोलहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।*